शोध मंथन Vol. XIII No.IV Oct.-Dec. 2022 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Impact Factor 8.783 (SJIF)

अज्ञेय की रचना दृष्टि एवं उनका जीवन दर्शन (असाध्यवीणा के विशेष संदर्भ में)

प्राप्तिः 08.12.2022
स्वीकृतः 25.12.2022

96

डॉ० जितेन्द्र कुमार परमार
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
महाराणा प्रताप राजकीय स्ना. महाविद्यालय
सिकंदरा राऊ, हाथरस
ईमेलः *jkparmar16@gmail.com*

सारांश

भारतीय जीवन दृष्टि में अज्ञेय की गहरी आस्था है और उनके जीवन दर्शन का केंद्र बिंदु 'मनुष्य' ही है एवं जीवन का सबसे बड़ा मूल्य है' मानवीय स्वतंत्रता'। उस युग में यांत्रिकता एवं सर्वसत्तावाद के दो पाटों के बीच में पिसते हुए मनुष्य की अस्मिता को बचाना ही अज्ञेय का उद्देष्य लक्षित होता है तथा इस हेतु वे सृजन का मार्ग स्वीकार करते हैं। "असाध्य वीणा" सृजन तत्व की व्याख्या करती हुई एक लंबी कविता है। आत्म–निवेदन का भाव ही सृजन की अर्हता हेतु प्रमुख शर्त है। 'केशकम्बली' नामक साधक अपनी इसी अर्हता के कारण असाध्य वीणा को साधने में सफल सिद्ध होता है इस कविता के माध्यम से अज्ञेय व्यक्ति व समाज के संबंधों पर भी चिंतन करते लक्षित होते हैं। इस कविता के माध्यम से अज्ञेय गहरे बौद्धिक चिंतन के साथ–साथ अपनी सांस्कृतिक अस्मिता की रक्षा करते हुए प्रतीत होते हैं।

मुख्य बिन्दु

सृजनात्मकता ,आत्म–निवेदन ,रहस्यवाद ,सांस्कृतिक अस्मिता।

आधुनिक हिंदी साहित्य में अज्ञेय की पहचान सूक्ष्म कलात्मक बोध, व्यापक जीवन अनुभूति, समृद्ध कल्पना शक्ति एवं अभिव्यंजना कौशल से युक्त साहित्यकार के रूप में होती है। छायावाद के पश्चात जब प्रगतिशील कविता की लौ शिल्पहीनता एवं राजनीतिक प्रतिबद्धता के कारण मद्धिम हो रही थी, अज्ञेय ने 'तार–सप्तक' के माध्यम से हिंदी कविता में नया प्राण फूंकने की कोशिश की।

कोई भी रचनाकार महान तब होता है जब वह युग की आवश्यकताओं व समस्याओं को गहरे तक पहचान कर अपना दायित्व निर्वहन करे। तुलसी के युग में सामाजिक व मानवीय संबंधों का आदर्श प्रतिस्थापन युग की आवश्यकता थी अतः 'रामचरितमानस' की रचना तुलसी द्वारा की गई। गुप्त जी के समय राष्ट्र– जागरण का सवाल महत्वपूर्ण था अतः 'भारत भारती' की रचना हुई। प्रसाद जी ने 'कामायनी' की रचना तब की जब युग की मूल समस्या अति बौद्धिकता व अतिभौतिकता की थी। निराला के समक्ष औपनिवेशिक ताकतों की अन्यायपूर्ण शक्ति की समस्या थी इसलिए उन्होंने शक्ति व नैतिकता के अंतर्संबंधों को नवीन दृष्टि से देखा तथा बताया कि 'शक्ति की करो मौलिक कल्पना'' 'आराधन का दृढ़ आराधन से दो उत्तर।' अज्ञेय के समय सत्य अत्यंत संश्लिष्ट था जिसकी

पहचान परंपरा और आधुनिकता से निर्मित व्यक्तित्व ही कर सकता था। अज्ञेय परंपरा कवि और कविता के अंतर्संबंधों पर निरंतर विचार करने वाले कवि हैं। कविता को अभिव्यक्ति से अधिक संप्रेषण मानने वाले कवि अज्ञेय, टी एस इलियट से खासे प्रभावित रहे हैं। उनके लेख 'ट्रेडिशन एंड द इंडिविजुअल टैलेंट 'के माध्यम से अज्ञेय कविता की रचना प्रक्रिया के अनेक पहलुओं पर लगातार विचार करते हैं। अपने इस लेख में इलियट ने 'निर्वैयक्तिकता के सिद्धांत' की चर्चा की है। इस लेख का अध्ययन करने के बाद परंपरा की अवधारणा पर अपने विचार रखते हुए बहुत ही सहजता से कवि रघुवीर सहाय से एक लंबी बातचीत में अज्ञेय कहते हैं– ''इलियट को पढ़ने के बाद जब मैं अपनी परंपरा की ओर लौटा तो मेरा यह भी ख्याल है कि मैंने उस अपनी परंपरा को भी कुछ नई दृष्टि से देखा, और जैसा परंपरा को मानना चाहिए, यह सिर्फ पुरानी रूढ़ि नहीं है, उसमें से ये जो आज हमारे जीवन में प्रासंगिक होता है परंपरा वही है, उसमें से जो बच कर हमारे जीवन के लिए मूल्यवान रह जाता है, हमें आगे बढ़ने में मदद करे, वही परंपरा है।''[1]

इस प्रकार वह समय की छलनी में परंपरा को परखते हुए जो प्रवाहित है उसे परंपरा एवं जो जड़ है उसे रूढ़ि के रुप में व्याख्यायित करते हैं। इसी संदर्भ में वह लिखते हैं कि 'कवि इसलिए मुक्त है कि वह परंपरा को बदलता चलता है.... परंपरा को निरंतर नया रूप देकर। और जब तक वह परंपरा में कुछ जोड़ता चलता है, तब तक वह नया होता चलता है और मुक्त होता चलता है। यह प्रक्रियागत उन्मोचन ही मुक्ति है। और यही आधुनिक होने की शर्त है।''[2]

अज्ञेय के जीवन दर्शन पर भारतीय वेदांत व मानववाद का प्रभाव तो है ही बौद्ध धर्म की करुणा दृष्टि में भी उनकी आस्था है। वह अनास्थावादी व अस्तित्त्ववादी नहीं हैं। भारतीय जीवन दृष्टि में उनकी गहरी आस्था है। अज्ञेय के जीवन दर्शन का केंद्र बिंदु 'मनुष्य' है और जीवन का सबसे बड़ा मूल्य है–'मानवीय स्वतंत्रता'। इसी कारण वह मार्क्सवादी जीवन दर्शन के प्रति नकार की दृष्टि रखते हैं। उनका मानना है कि मार्क्सवादी एक ढंग से व्यक्ति की स्वतंत्रता छीन लेता है और सामूहिकता के नाम पर एक खास ढंग से सोचने को विवश करता है। वह लोकतांत्रिक मूल्यों का हनन करता है। उनकी दृष्टि में मानव वही है जो स्वाधीन होकर समाज के विषय में सोच सके।

अज्ञेय के युग का यह केंद्रीय प्रश्न बन गया था कि यांत्रिकता एवं सर्वसत्तावाद के दो पाटों के बीच में पिसते हुए मनुष्य की अस्मिता को कैसे बचाया जा सकता है। अज्ञेय का समय द्वितीय विश्व युद्ध के बाद का समय है जब मनुष्य पर अनास्था हावी है, वह निरर्थकता बोध से ग्रसित है, उसे मृत्यु बोध जकड़े हुए है और वह मोह भंग की स्थिति से गुजर रहा है। अज्ञेय उस परिवेश को एवं उन समस्याओं दोनों को समझ रहे थे। उन्होंने सृजन का रास्ता चुना, सृजनात्मकता की ओर उन्मुख करने का रास्ता चुना। वास्तव में व्यक्ति और समाज के अंतर्संबंधों की पड़ताल अज्ञेय की सारी साहित्य–साधना का केंद्र बिंदु है। जिस युग में अस्तित्ववादी अनास्था, विज्ञान व सत्ता का सर्ववादी रूप एवं मार्क्सवादी जैसी विचारधाराएं मिलकर व्यक्ति की सत्ता को सीमित कर रही थी, उस समय अज्ञेय ने इस प्रश्न को एक नए नजरिए से देखा और घोषित किया कि 'व्यक्ति समाज से नहीं, समाज में स्वतंत्र है।' व्यक्ति व समाज को परस्पर विरोधी शक्तियों के रूप में देखने के स्थान पर परस्पर पूरक सत्ताओं के रूप में देखा। 'असाध्य वीणा 'भी एक स्तर पर व्यष्टि और समष्टि के संबंधों का आख्यान है। यह कविता व्यष्टि से समष्टि की ओर जाती है और फिर समष्टि से व्यष्टि की ओर वापस आती है। असाध्य वीणा को साधने से पहले सभी व्यक्ति परस्पर असंबद्ध एवं स्वतंत्र हैं। वे सारे कला के ब्रह्मानंद में एक साथ डूबते हैं किंतु इसके बावजूद अपने अलग–अलग अर्थ की पहचान करते हुए मुक्ति प्राप्त

करते हैं। प्रतीकात्मक अर्थ यह है कि मूलतः व्यक्ति स्वतंत्र है, सभी व्यक्तियों के शामिल होने से सामूहिकता या सामाजिकता का उद्‌भव होता है किंतु समूह में रहने के बावजूद प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन के अर्थ की खोज अपने विशेष तरीके से करता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन अर्थ की खोज स्वयं ही करनी होती है। असाध्य वीणा के सध जाने पर राजा, रानी आदि सभी को अपने–अपने सत्य मिले –'डूब गए सब एक साथ, सब अलग–अलग एकाकी पार तिरे।''[3]

'असाध्य –वीणा' की कहानी का सार यह है कि एक राजा के पास वज्रकीर्ति द्वारा 'किरीटी –तरु' नामक वृक्ष से निर्मित एक ऐसी वीणा थी, जिसे कोई बजा नहीं पाता था। अंततः उसके निमंत्रण पर एक बार प्रियंवद केशकम्बली नामक एक साधक उसकी सभा में उपस्थित हुआ जो अपनी साधना के द्वारा वीणा को साधने में सफल रहा। और वह इसलिए सफल रहा क्योंकि उसने वीणा पर खुद को नहीं थोपा बल्कि उसने स्वयं को भुला कर वीणा को सुना, उसके संगीत को अपनी धमनियों में बहने दिया और स्वयं को वीणा से एकाकार होने दिया। वह भव्य वृक्ष जीवन का प्रतीक है, जो एक साथ प्राचीन, उच्च, व्यापक, दृढ़ और गहन है और वीणा उसके सत्य की प्रतीक, जिसे कोई साधक ही लंबी साधना के बाद उपलब्ध कर सकता है।

'असाध्य वीणा 'सृजन तत्व की व्याख्या करते समय चार मुख्य आयामों पर प्रकाश डालती है– सृजन की अर्हता, सृजन की प्रक्रिया, सृजनात्मकता का स्वरूप एवं सृजन का प्रभाव। अहंकारशून्यता व आत्मनिवेदन का भाव ही प्रियंवद को सृजनात्मकता के लिए अर्ह बनाता है। जिस वीणा को' कोई ज्ञानी गुणी आज तक इसे न साध सका',[4] उसी को

'वाद्य उठा साधक ने गोद रख लिया,
धीरे धीरे झुक उस पर, तारों पर मस्तक टेक दिया।'[5]

सृजनात्मकता की प्रक्रिया में आत्मनिवेदन का भाव तो है ही–

'सघन निविड़ में वह अपने को,
सौंप रहा था उसी किरीटी तरु को''[6]

साथ ही यह प्रक्रिया व्यक्तिगत है। साधना के चरमोत्कर्ष की स्थिति में वह नितांत अकेला ही है–

भूल गया था केशकम्बली राज सभा कोः
कंबल पर अभिमंत्रित एक अकेलेपन में डूब गया था
जिसमें साक्षी के आगे था
जीवित वही किरीटी तरु
'संबोधित कर उस तरु को, करता था
नीरव एकालाप प्रियंवद''[7]

सृजन के उद्‌भव की स्थिति में प्रियंवद स्वयं को विस्मृत कर देता है, खुद का विलय कर देता है–

' मुझको मैं भूल गया हूं–
मैं नहीं, नहीं मैं कहीं नहीं''[8]

और फिर, उससे ऐसा संगीत अवतरित हुआ जो अपने स्वरूप में ब्रह्मा के साक्षात्कार की तरह होता है।

''अवतरित हुआ संगीत
स्वयंभू
जिसमें सोता है अखंड
ब्रह्मा का मौन
अषेश प्रभामय''[9]

इस सृजन का प्रभाव सभी पर अलग–अलग पड़ता है। साधना से उद्भूत संगीत से राजा–रानी को क्रमशः अपने जीवन को धर्म भाव से उत्सर्ग करने और प्रेम को जीवन में सर्वश्रेष्ठ स्थान देने की प्रेरणा प्राप्त हुई तो उपस्थित श्रोताओं को भी अपना–अपना काम्य मिल गया–

''डूब गए सब एक साथ
सब अलग–अलग एकाकी पार तिरे।''[10]

तात्पर्य यह है कि सभी व्यक्ति अपने स्वधर्म की पहचान कर सके और भाव जगत के विस्तार के कारण समाज के लिए अधिक उपयोगी भी सिद्ध हो सके हैं। जब अज्ञेय यह कहते हैं कि– 'उठ गई सभा, सब अपने–अपने काम लगे''[11] और 'युग पलट गया'[12] तो इसका तात्पर्य यह है कि उनका ध्यान जीवन से पलायन करने पर नहीं, बल्कि अपने को महाशून्य में लय रखते हुए अपना जीवन व्यापार चलाने पर है। तथा यह भी, कि इस घटना का युगांतरकारी प्रभाव हुआ।

यहां इयत्ता का अलग–अलग जगाना ही कवि का अभीष्ट था। बूंद समुद्र में जाकर विलीन ना हो जाए बल्कि वह रहे बूंद ही किंतु इस अहसास के साथ कि वह समुद्र है। अज्ञेय समाज का निषेध नहीं करते किंतु वैयक्तिक अद्वितीयता को भी ध्यान में रखे जाने का आग्रह करते हैं क्योंकि समाज के बनने–बिगड़ने में इस अद्वितीयता का कोई कम योगदान नहीं हुआ करता, ऐसा वे मानते हैं। वह मानते हैं कि सामूहिकता से अलग व्यक्ति के अपने सुख–दुःख भी होते हैं जो जीवन के कार्य–व्यापार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वह कहते हैं कि– 'वास्तव में व्यक्ति के बिना तो समाज नहीं होता। और यह मानना भी सही है कि समाज के बिना भी व्यक्ति नहीं जीता। वही अपने लिए समाज बनाता है। ऐसा नहीं होता कि समाज बने–बनाए कहीं आकाश से उतरते हैं और उसमें व्यक्ति 'फिट' कर दिए जाते हैं। व्यक्ति होते हैं और वे लगातार साथ–साथ समाज की रचना करते हैं और व्यक्तित्व का विकास हो सके, सही ढंग से, ऐसे समाज बनाते हैं। स्वाधीन समाज और कम स्वाधीन समाज में अंतर यही है कि एक में व्यक्तित्व के समग्र विकास की गुंजाइश होती है और दूसरे में नहीं होती।''[13]

अज्ञेय का मानना है कि व्यक्ति की पूर्णता की अनुभूति को प्राप्त कराने के लिए ज्ञान विज्ञान पर्याप्त नहीं है क्योंकि जितना ही तकनीकी का फैलाव होता जा रहा है, मनुष्य उतना ही विवश होता जा रहा है, उसकी संवेदना उतनी ही क्षरित होती जा रही है। इसके लिए जीवन के प्रति समर्पण चाहिए।

'असाध्य वीणा' में भले ही रहस्यवादी भावना लक्षित होती हो किंतु यह भी स्पष्ट है कि उनका रहस्यवाद मध्यकालीन सिद्धों–नाथों–संतों के रहस्यवाद से एकदम अलग है। सन 1939 के' हंस' अंक में अपनी 'रहस्यवाद' शीर्षक कविता में वह कहते हैं कि' मेरा रहस्यवाद ईश्वर की ओर नहीं है। 'यह रहस्यवाद सीमित अणु में विराट की शक्ति समा लेना चाहता है। अज्ञेय का भाव–सत्य पर आधारित रहस्यवाद 'सत्य से साक्षात्कार' है। इसीलिए इसे 'नव्य–रहस्यवाद' कहा गया। जिस तरह

निराला का विद्रोही तेवर आगे चलकर भक्ति में ढल जाता है उसी तरह अज्ञेय भी दर्शन की तरफ चुके हैं। किन्तु अज्ञेय अंतर्मुखी नहीं होना चाहते। वे जीवन की पूर्णता का अनुभव करके अधिक संयत ऊर्जा एवं रचनात्मकता से युक्त होकर जीवन में प्रवेश करना चाहते हैं। तात्पर्य यह है कि जीवन की पूर्णता को समर्पण से, साधना से अनुभव करके यदि व्यक्ति पुनः जीवन में प्रवेश करें तो वह अधिक स्वस्थ एवं सर्जनात्मक होगा।

अज्ञेय का मानना था कि ''उस साहित्य की कोई प्रतिष्ठा नहीं हो सकती जिसमें कोई सांस्कृतिक अस्मिता नहीं होती। जिससे हम बने हैं उसे पहचानते हुए उसे अभिव्यक्ति दें तो वर्तमान व भविष्य हमारे हैं, नहीं तो हम कहीं के नहीं।''[15] किरीटी तरु को जानने की प्रक्रिया वास्तव में अपनी सांस्कृतिक अस्मिता की खोज के माध्यम से व्यक्तित्व के उन्नयन का प्रयास ही है। एक ऐसे समय में जबकि प्रायः सारा साहित्यिक चिंतन पश्चिमी सिद्धांतों से प्रभावित व परिचालित हो रहा था और भारतीय पारंपरिक साहित्य चिंतन को हेय दृष्टि से देखा जा रहा था, वहां अज्ञेय गहरे बौद्धिक चिंतन के साथ अपनी सांस्कृतिक अस्मिता की रक्षा करते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में न केवल उस दौर में बल्कि किसी भी दौर में 'असाध्य–वीणा' अपनी विशिष्ट जीवन दृष्टि के कारण अपनी प्रासंगिकता सिद्ध करती है। अपनी समग्रता में यह कविता अज्ञेय की वैचारिक दिशा का प्रतिनिधित्व करने के साथ ही उन की अनुभूति क्षमता व कला अनुशासन का भी अप्रतिम उदाहरण है।

संदर्भ

1. अज्ञेय अपने बारे मेंः एक साक्षात्कार. आकाशवाणी महानिदेशालय. पृष्ठ **91.**
2. भवंती (अज्ञेय). पृष्ठ **22.**
3. असाध्य वीणा. पृष्ठ **43.**
4. वही. पृष्ठ **34.**
5. वही. पृष्ठ **35.**
6. वही. पृष्ठ **36.**
7. वही. पृष्ठ **37.**
8. वही. पृष्ठ **41.**
9. वही. पृष्ठ **43.**
10. वही. पृष्ठ **43.**
11. वही. पृष्ठ **47.**
12. वही. पृष्ठ **47.**
13. अज्ञेय अपने बारे में. पृष्ठ **57.**
14. 'रहस्यवाद' कविता. (हंस अंक. 1939).
15. सांस्कृतिक समग्रता. (1984). भाषिक वैविध्य (केन्द्र और परिधि). नेशनल पब्लिशिंग हाउसः नई दिल्ली. संस्करण. पृष्ठ **19.**